OPEN ACCESS

DRA ANNUAL INTERNATIONAL CONFERENCE 2024 ON "SOCIO-ECONOMIC TRANSFORMATION: OPPORTUNITIES AND CHALLENGES"

Int. Jr. of Contemp. Res. in Multi. *PEER-REVIEWED JOURNAL* *Volume 4 [Special Issue 1] Year 2025*

Conference Paper

सामाजिक न्याय और आरक्षण

डॉ. मीनू तंवर

प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष (समाजशास्त्र विभाग), चौ. बल्लू राम गोदारा राजकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, श्रीगंगानगर राजस्थान, भारत

Corresponding Author: *डॉ. मीनू तंवर

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.18200592

सारांश

सामाजिक न्याय और राजनैतिक चिंतन में समानता (समतावाद) एक स्थापित अवधारणा है। सामाजिक न्याय की अवधारणा सभी मनुष्यों के मूल्य और नैतिक स्थिति की समानता की संकल्पना पर बल देती हैए समतावाद का दर्शन ऐसी व्यवस्था का समर्थन करता हैए जिसमें सम्पन्न और समर्थ व्यक्तियों के साथ.साथ निर्बल और निर्धन वंचित व्यक्तियों को भी आत्मविश्वास के साथ आत्मविकास के लिए उपयुक्त अवसर और अनुकूल परिस्थितियाँ प्राप्त हो सके। सही अर्थों में निष्पक्ष या पक्षपात रहित बर्ताव ही न्याय है। जब ऐसा व्यवहार समाज अपने सभी वर्गों.उपवर्गों के साथ करता है, तो उसे सामाजिक न्याय कहते हैं। सामाजिक न्याय के परम्परागत स्वरूप की तुलना जब आधुनिक भारतीय समाज में न्याय से करते हैं, तो पाते हैं कि परम्परागत समाज में जिसे न्याय समझा जाता थाए वह आधुनिक सन्दर्भ में घोर अन्याय माना जाता है। परम्परागत न्याय जन्म, असमानता और भेदभाव पर आधारित था जबकि आधुनिक सामाजिक न्याय जन्म, धर्म, जाति की समानताए स्वतन्त्रता, मानव व्यक्तित्व की गरिमा की रक्षा पर बल देता है। जहां तक सामाजिक न्याय में आरक्षण की बात करें तो एक न्याय पूर्ण समाज व्यवस्था के विकास में सभी को समान रूप से अधिकार देने के लिए आरक्षण आवश्यक है। सामाजिक न्याय का सारतत्व "समता का सिद्धान्त" है।

Manuscript Information

- **ISSN No:** 2583-7397
- **Received:** 12-12-2024
- **Accepted:** 27-02-2025
- **Published:** 28-03-2025
- **IJCRM:**4(SP1); 2025: 207-210
- **©2025, All Rights Reserved**
- **Plagiarism Checked:** Yes
- **Peer Review Process:** Yes

How to Cite this Article

डॉ. मीनू तंवर. सामाजिक न्याय और आरक्षण. Int J Contemp Res Multidiscip. 2025;4(6):207-210.

Access this Article Online

www.multiarticlesjournal.com

मुख्य शब्द: समतावाद, सामाजिक न्याय, असमानता, जातिगत भेदभाव, लिंगभेद विषमता

© 2025 डॉ. मीनू तंवर. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

प्रस्तावना

सामाजिक न्याय से आशय एक ऐसे न्याय पूर्ण समाज की स्थापना से है जिसमें सामाजिक-आर्थिक विषमताएं न्यूनतम हो और संसाधनों का वितरण सर्वमान्य स्वीकृति के आधार पर हो। इसके मुताबिक किसी के साथ सामाजिकए धार्मिक और सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों के आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए। हर व्यक्ति के पास इतने न्यूनतम संसाधन होने चाहिए कि वह सम्मानपूर्वक उत्तम जीवन जीने के सपने को साकार कर सके। मानव सभ्यता के इतिहास पर गौर करें तो यह साफ जाहिर होता है कि न्याय व अन्याय के बीच में विभाजन की रेखा बहुत महीन है। न्याय, अन्याय का मापदण्ड सर्वकालिक नहीं है, यह समयानुसार बदलता रहा है। जिसकी वजह से मानव व्यवहार का काफी बड़ा हिस्सा न्याय.अन्याय के बीच झूलता रहा है (धनंजय कीर, 2016)। भारतीय संविधान के भाग 4 के अन्तर्गत सामाजिक-आर्थिक न्याय की महत्त्वपूर्ण व्यवस्था की गई है। एक अवधारणा के रूप में सामाजिक न्याय की बुनियाद सभी मनुष्यों को समान मानने के आग्रह पर आधारित है। किसी भी व्यक्ति से सामाजिकए धार्मिक और सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों के आधार पर भेदभाव न होए वही सामाजिक न्याय है। इस अवधारणा ने सामाजिक समानता के सिद्धान्तों के अनुसार नियमों और कानूनों को लागू करने का समर्थन किया है। सामाजिक न्याय शब्द के प्रथम भाग सामाजिक का अर्थ है- समाज में रहने वाले सभी लोग और दूसरे भाग न्याय से अभिप्राय है- स्वतन्त्रता (खण्डेला, 1996)। स्वतन्त्रता सामाजिक न्याय का एक आवश्यक व महत्वपूर्ण तत्व है तथापि अधिक निश्चित अर्थ में सामाजिक न्याय से आशय आर्थिक व सामाजिक क्षेत्रों में समानता की स्थापना है। स्वतन्त्रता कतिपय बुनियादी अधिकारों की कल्पना करती है जो व्यक्ति के नैसर्गिक विकास के लिए जरूरी है। यदि समाज की रचना असमानता के सिद्धान्त पर हुई हो तो एक न्याय पूर्ण व्यवस्था वह है जो समान हो। व्यवस्था में जितनी अधिक विषमता होती है अन्याय व शोषण की सम्भावना भी उतनी अधिक होती है (खण्डेला, 1996)।

सामाजिक न्याय का ऐतिहासिक दृष्टिकोण

प्राचीन काल में न्याय के निर्धारण का आधार ईश्वरीय था। ईश्वर, पैगम्बर द्वारा जो कुछ कहा गया वह न्याय है और अनुयायी उसकी अनुपालना करते थे। दैवीय शक्ति के नाम पर समाज में पुरोहित वर्ग, पादरी, सन्त.पीर का न्यायिक वर्चस्व था। यहाँ तक कि वर्ण व्यवस्था में भी ब्राह्मण की उत्पत्ति ईश्वर के मुख से मानी गई थी अर्थात् जो कुछ पुरोहित, ब्राह्मण ने कहा वह न्याय संगत थाए तर्क की प्रधानता गौण थी। भारत में वर्ण और जाति व्यवस्था मनु के समय में भी इतनी विकृत नहीं थी जितनी वर्तमान में देखने को मिलती है। मनु स्मृति भी कर्म प्रधान सामाजिक व्यवस्था का समर्थन करती है जो वर्णोन्नति और वर्णावनति का कारण बन सकता था। रामायण काल में विश्वामित्र जैसे क्षत्रिय के लिए सम्भव था कि वे अपने तप और योग्यता के आधार पर वर्णोन्नति प्राप्त कर ब्राह्मण बन जाए, परन्तु महाभारत काल आते-आते वह व्यवस्था इतनी कठोर हो गई कि सद्विद्या और सद्गुणों के बावजूद कर्ण को सूत-पुत्र कहा गया। कालान्तर में राजतन्त्रात्मक व्यवस्था ने राजा का स्थान ईश्वर तुल्य बना दिया। जिसके परिणामस्वरूप राजशाही व्यवस्था में सामाजिक न्याय के निर्धारण व स्थापना में क्षत्रिय राजा व पुरोहित की मिली.जुली भागेदारी रही (भारती, 1993)।

भारत में मुगल साम्राज्य का आखिरी दौर निराशा और सामाजिक असमानता से युक्त रहा। ब्रिटिश उपनिवेशवाद की स्थापना के साथ भारतीय समाज पाश्चात्य समाज और संस्कृति के सम्पर्क में आयाए परिणामस्वरूप सामाजिक न्याय में परम्परा व आधुनिकता का मिलाजुला असर देखने को मिला। वैज्ञानिक और भौतिक दृष्टिकोण के विकास के साथ पश्चिम में न केवल चिन्तन हुआ अपितु वहाँ की समाज व्यवस्था भी चर्च के बन्धन से मुक्त हुई। अंग्रेजों के सम्पर्क में आने के फलस्वरूप भारतीय जनमानस में एक नई चेतना का विकास हुआ जिससे सामाजिक न्याय में समानता व स्वतन्त्रता के लिए व्यापक जागृति पैदा हुई। अमेरिकन दार्शनिक नैन्सी फ्रैजर ने सामाजिक न्याय की दो अवधारणाओं का अन्तर करते हुए बताया है कि सामाजिक न्याय की प्रथम अवधारणा पुनर्वितरण पर केन्द्रित है जिसमें माल और संसाधनों के न्यायपूर्ण वितरण की मांग है और दूसरी पहचान के दावों पर आधारित है। जिसके केन्द्र में विभिन्न सामाजिक समूहों के समान अवसर के लक्ष्य की प्राप्ति है। फ्रेजर का तर्क है कि सामाजिक अन्याय को खत्म करने के लिए पहचान और पुनर्वितरण की राजनीति को एक साथ अपनाया जाना चाहिए क्योंकि इनमें से कोई एक सांस्कृतिक और आर्थिक अन्याय को दूर करने में सक्षम नहीं है। उनका तर्क मूल रूप से तो महिलाओं के सम्बन्ध में है, परन्तु यह जाति उत्पीड़न के मामले में भी सटीक बैठता है। फ्रैजर इसे लिंग के अनुरूप आर्थिक और सांस्कृतिक पहलुओं की उपज मानते हैं इसलिए लिंग की तरह जाति आधारित अन्याय को समाप्त करने की भी बात करते हैं।

प्लेटों ने अपनी पुस्तक 'द रिपब्लिक' में लिखा है न्याय मानवीय गुणों और बन्धनों का हिस्सा है, जो समाज में मनुष्य को एक साथ जोड़ता है। यह वही गुण है जो मनुष्य को अच्छा और सामाजिक बनाता है।

कैथोलिक धर्मशास्त्रियों द्वारा लिखित पुस्तकों में सामाजिक न्याय समाज के लिए न्याय थाए वह न्याय जो समाज में व्यक्तियों के बीच सम्बन्धों को नियंत्रित करता है। 1861 में ब्रिटिश दार्शनिक और अर्थशास्त्री जॉन स्टुअर्ट मिल ने उपयोगितावाद में लिखा था कि "समाज को उन सभी के साथ समान व्यवहार करना चाहिए जो इसके समान रूप से योग्य है। यह सामाजिक और वितरणात्मक न्याय का उच्चतम अमूर्त मानक है।

19वीं व 20वीं शताब्दी में सामाजिक न्याय धर्मशास्त्रों से निकलकर अमेरिकी राजनैतिक और कानूनी दर्शन में महत्त्वपूर्ण विषय बन गया। जॉन डेवी, रोस्को पाऊड, रूसो, लुई ब्रैंडिस ने सामाजिक न्याय को सामाजिक और आर्थिक सुधारों के रूप में परिभाषित किया (अनिरूद्ध प्रसाद, 1991)।

भारत में सामाजिक न्याय और अधिकारों की बात करें तो समाज में एक नये बुद्धिजीवी वर्ग का उदय हुआ जिसने आडम्बर और अन्धविश्वास का खुल कर विरोध किया और वैज्ञानिक चिन्तन पर जोर दिया। राजा राम मोहन राय, रविन्द्र नाथ टैगोर, केशवचन्द सेन, स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे विचारकों की दृष्टि तार्किक तो थी ही नैतिक और मानवतावादी भी थी। जिन्होंने धर्म ग्रन्थों के अध्ययन में कट्टरता, धार्मिक पाखण्डवाद, कर्मकाण्ड का जमकर विरोध किया। स्वामी

© 2025 डॉ. मीनू तंवर. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

विवेकानन्द ने जातिगत भेदभाव और छुआछूत का खुल कर विरोध किया तथा सामाजिक न्याय की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। बीसवीं सदी में स्वतन्त्रता के राष्ट्रीय आन्दोलन में महात्मा गाँधी ने सर्वोदय समाज की स्थापना का लक्ष्य रखा। जिसमें ऐसे समाज की कल्पना की, जिसमें सभी उन्नत और सभी सुखी हो, सभी के साथ न्याय होए सामाजिक प्रगति में सब समान रूप से भागीदार बने और सभी को सामाजिक प्रगति में समान रूप से हिस्सा मिले। गाँधी यह समझते थे कि उनकी सर्वोदय समाज की कल्पना तब तक साकार नहीं हो सकती जब तक कि समाज के निर्बल, कमजोर, दलित और महिला वर्ग सशक्त नहीं होंगे (देसाई, 1982)।

भारत जैसे देश में सामाजिक न्याय का नारा वंचित समूहों की राजनैतिक चाह का प्रमुख आधार रहा है। उदारतावादी मानवीय राजनीतिक सिद्धान्त में उदारतावादी समतावाद से आगे बढ़ते हुए सामाजिक न्याय के सिद्धान्तीकरण में कई आयाम जुड़ते गये। नारीवाद के दायरे में स्त्रियों के अधिकारों को लेकर भी विभिन्न स्तरों पर सिद्धान्तीकरण हुआ है लेकिन अधिकांश धर्म या सम्प्रदाय जिस व्यवहारिक रूप में सामने आए उनमें कई तरह के ऊँच-नीच और भेदभाव जुड़ते गए (अनिरूद्ध प्रसाद, 1991)।

सामाजिक न्याय में आरक्षण की संकल्पना

आरक्षण नागरिक भेदभाव की नीति का एक अंग है। इसका उद्देश्य वंचित एवं पीड़ित लोगों को सामाजिक न्याय दिलाना है। इसमें सामाजिक, आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्गों के लोगों को सार्वजनिक महत्व के कतिपय क्षेत्रों में सामान्य प्रतिस्पर्धा से पृथक कुछ स्थान आरक्षित किया जाता है। समाज में आरक्षण किसी न किसी रूप मे प्राचीन काल से चला आ रहा है। चाहे वह विजेता या विजित अथवा शासक व शासित के अधिकारों व सुविधाओं के वितरण में भेद को लेकर हो अथवा वर्ण व जाति व्यवस्थाओं के रूप में जन्म के आधार पर विशेषाधिकारों के निर्धारण के रूप में सामाजिक न्याय की बुनियाद सभी मनुष्यों को समान मानने के आग्रह पर आधारित है (देसाई, 1982)। न्याय ही समाज में फैली तमाम तरह की बुराईयों और गैर.सामाजिक तत्वों पर लगाम लगाने, उन्हें सजा देने तथा तमाम नागरिकों के नैतिक और मानवाधिकारों की रक्षा करता है। समाज सदैव यह प्रयासरत रहता है कि समाज में फैली असमानता और भेदभाव से सामाजिक न्याय की मांग को देखते हुए कई कानून बनेए किन्तु आज भी निर्बल व कमजोर व्यक्ति अपने अधिकारों के प्रति अनभिज्ञ है। वह अपने भाग्य को कोसता हुआ सामाजिक असमानता को भुगत रहा है। सामाजिक न्याय एक सपना बन कर रह गया है (खण्डेला, 1996)। समाज में फैले भेदभाव और असमानता के परिणाम स्वरूप संयुक्त राष्ट्र महासभा ने वर्ष 2007 में 20 फरवरी के दिन को "सामाजिक न्याय दिवस" के रूप में मनाने की घोषणा की थीए जिसके आयोजन का उद्देष्य विभिन्न सामाजिक मुद्दों जैसे बहिष्कार, बेरोजगारी, गरीबी, महिला सशक्तिकरण और सामाजिक भेदभाव पर चर्चा करना व इन्हें रोकने के उपायों को सुदृढ़ करना था।

आरक्षण का अर्थ

सामाजिक न्याय के साथ आरक्षण के सम्बंध को बताने से पहले आरक्षण को सही अर्थों में समझना आवश्यक हो जाता है। आरक्षण समाज के दलित, कमजोर और पिछड़े वर्गों के लोगों के लिए सामान्य चयन की न्यूनतम अर्हता में शिथिलता बरत कर स्थान आरक्षित कर सरकारी सेवाओं में भर्ती अथवा शैक्षिक संस्थाओं में प्रवेश का उपबन्ध बनाना तथा लोकसभा एवं विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लोगों के लिए स्थान सुरक्षित करने से है। अनुसूचित जाति और जनजाति का उल्लेख भारत के राष्ट्रपति द्वारा संविधान के अनुच्छेद 341 व 342 के अन्तर्गत जारी सूची में किया गया है। साधारण भाषा में आरक्षण का तात्पर्य प्रतियोगिता के नियमों में कुछ शिथिलता बरतकर अविकसित और विशेषाधिकारहीन वर्ग के लोगों को सफलता के बेहतर अवसर प्रदान करना है (अनिरूद्ध प्रसाद 1991)।

वर्तमान समय के भारत में आरक्षण एक ऐसा मुद्दा है जो गहन चर्चा का विषय बन गया है तथा जिसे अत्यंत सावधानी पूर्वक सम्भालने की आवश्यकता है। वर्तमान समय में आरक्षण का केवल जातिगत आधार ही प्रबल हो रहा है और भारत दो खेमों में बंटता नजर आता है। एक वह जो आरक्षण के पक्ष में है और दूसरा वह जो आरक्षण का विरोध कर रहा है। आरक्षण के संबंध में एक तीसरा विचित्र खेमा उत्पन्न हो गया है जो आरक्षण का जमकर विरोध कर रहा है परन्तु उसका विरोध आरक्षण खत्म करने के लिए नहीं हैए बल्कि मोल भाव का बाजार गरम कर कुछ और जातियों को आरक्षण की लाभार्थी सूची में अंकित कराना है। आरक्षण समर्थक या विरोधी एक अजीब माहौल पैदा कर रहे हैं, जिसमें न कोई निरपेक्षए वैज्ञानिक और चिन्तनशील विचार प्रस्तुत कर पा रहे हैं और न ही किसी दूसरे का ऐसा विचार सुनने को तैयार हैं (अनिरूद्ध प्रसाद 1990)।

आरक्षण की आवश्यकता क्यों है ?

आरक्षण समाज के उन वर्गों की सहायता की आवश्यकता है जो राज्य या किसी अन्य अभिकरण की सहायता से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते। क्या आरक्षण अनारक्षित वर्गों के खिलाफ या भेदभावपूर्ण है ? यह सकरात्मक हक में भेदभावपूर्ण है या नकारात्मक अर्थ में। इस तरह के भेदभाव के लिए उन्हें राज्य की सहायता की आवश्यकता होती है ताकि अनारक्षित वर्ग को बराबर लाया जा सके। इस अर्थ में आरक्षण को सकारात्मक भेदभाव भी कहा जा सकता है। क्योंकि आरक्षण की पहल राज्य द्वारा की जाती है। भारत में आरक्षण की शुरूआत 1882 में हंटर आयोग के गठन के साथ हुई थी। उस समय विख्यात समाज सुधारक महात्मा ज्योति राव फूले ने सभी के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा और सरकारी नौकरियों में अनुपातिक प्रतिनिधित्व की मांग की थी (अनिरूद्ध प्रसाद 1991)।

1901 में महाराष्ट्र के रियासत कोल्हापुर में साहू महाराज द्वारा आरक्षण की शुरूआत की गई। यह अधिसूचना भारत में दलित वर्गों के कल्याण के लिए आरक्षण उपलब्ध कराने वाला पहला सरकारी आदेश था।

© 2025 डॉ. मीनू तंवर. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

1909 और 1919 में भारत सरकार अधिनियम में आरक्षण का प्रावधान किया गया। 1921 में मद्रास प्रेसीडेंसी ने जातिगत सरकारी आज्ञापत्र जारी किया जिसमें आरक्षण की व्यवस्था की गई। 1935 में भारत सरकार अधिनियम में आरक्षण का प्रावधान किया गया समाज के कमजोर तबकों के लिए सीटों में आरक्षण को 'गवर्नमेंट आफ इण्डिया' एक्ट में शामिल किया गया। भारतीय राज्यों में स्वशासन के अलावा संघीय ढ़ांचे को बनाने के लिए ब्रिटिश शासकों ने कानून बनाया। इस अधिनियम के साथ ही अनुसूचित जाति शब्द का इस्तेमाल शुरू किया गया (आर.जी. सिंह, 1982)। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने 1942 में अनुसूचित जातियों के उन्नति एवं समर्थन के लिए 'अखिल भारतीय दलित वर्ग महासंघ' की स्थापना की व सरकारी सेवाओं में आरक्षण की माँग की तथा कैबिनेट मिशन प्रस्ताव में अन्य कई सिफारिशों के साथ अनुपातिक प्रतिनिधित्व का प्रस्ताव दिया गया। 26 जनवरी, 1950 को भारतीय संविधान में सभी नागरिकों को समान अवसर देते हुए सामाजिक व आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग के लिए स्थान सुरक्षित (आरक्षित) करने की व्यवस्था की गई (देसाई, 1982)।

भारत में राज्य विभिन्न समुदायों को भिन्न आधार पर आरक्षण प्रदान करता है। अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षण का प्रमुख आधार सामाजिक भेदभाव एवं छुआछूत जैसी समस्या रही है जिन्हें उन्होंने बहुत समय से अनुभव किया है और विडम्बना यह है कि वर्तमान में भी जहाँ भारत महाशक्ति बनने की ओर अग्रसर है वहाँ पर आज भी दलित दूल्हे को घोड़ी पर चढ़ने नहीं दिया जाताए दलित स्त्रियों के अपहरण व दुष्कर्म की घटनाएं आम है। जनजातियों को उनके भौगोलिक तथा अन्य कारणों से उत्पन्न अभावों के आधार पर आरक्षण दिया गया है जबकि अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण उनके सामाजिक और शैक्षणिक पिछड़ेपन के कारण दिया जाता है। महिलाओं को आरक्षण समाज में उनके खिलाफ हो रहे भेदभाव एवं पुरूष प्रधान सामाजिक व्यवस्था जैसे मूल्यों के आधार पर दिया जाता है जबकि गरीब वर्गों को उनके आर्थिक आधार पर आरक्षण दिया गया है और आर्थिक आधार पर आरक्षण उन समुदायों को दिया गया है जिन्हें किसी भी वर्ग में आरक्षण नहीं मिल रहा है। ये मूल रूप से तथाकथित उच्च जातियों से सम्बन्ध रखते हैं (भारती, 1993)।

जब हम सामाजिक न्याय व आरक्षण की बात करते हैं जो पाते हैं कि न केवल भारत अपितु विश्व के अधिकांश देशों में इसका प्रावधान है, यह कमोबेश विवाद का विषय बना हुआ है। सम्पूर्ण समाज के राजनेता और बुद्धिजीवी वर्ग आरक्षण के नाम पर दो खेमों में बंटे हुए नजर आते हैं। एक आरक्षण के पक्ष में खड़ा होता है, जबकि दूसरा उसकी खिलाफत करता है। वस्तुतः दोनों पक्षों में मतान्तर और विवाद सामाजिक न्याय के सन्दर्भ में आरक्षण के औचित्य को लेकर है। आरक्षण कोई अपवाद नही है। यह बात अलग है कि इसकी प्रकृति, परिणाम, स्वरूप और औचित्य के आधार पर सदैव एक नहीं रहे हैं, कुछ लोगों का मानना है कि आरक्षण व विशेष सुविधाओं के राजकीय प्रावधान से स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का हनन होता है। साथ ही आरक्षण के कारण स्वस्थ प्रतियोगिता के माध्यम से योग्य व्यक्ति का चयन नहीं हो पाता। इसे दूसरे दृष्टिकोण से देखें, तो स्वस्थ प्रतियोगिता व पूर्ण स्वतन्त्रता का सिद्धान्त वहाँ लाभकारी होता है, जहां समाज के सभी वर्गों को विकास के समान अवसर मिले। भारत में जहां अनुसूचित जातियाँ, जनजातियाँ, महिलाएँ सदियों से अशिक्षा, अज्ञान, अंधविश्वास व शोषण का शिकार रही हैं। ऐसे वातावरण में उनके समान अवसर की कल्पना करना सामाजिक और आर्थिक विकास से परे है (जी.एल. शर्माए 2015)।

सामाजिक न्याय में आरक्षण का विरोध करने पर अक्सर सुनने को मिलता है कि यह गुणवत्ता के सिद्धान्त के विरूद्ध है। गुणवत्ता के सिद्धान्त के अनुसार किसी सार्वजनिक दायित्व निर्वाह का अवसर श्रेष्ठ गुणवत्ता वाले व्यक्ति को दिया जाना चाहिए। इसमे किसी समुदाय विशेष के व्यक्तियों को समान महत्व देना सही नहीं है। साथ ही अन्य पदों पर सभी समुदायों को महत्व दिया जाना चाहिए। शैक्षणिक रूप से पिछड़े सदस्यों का अधिकार होगा कि सरकार की तरफ से वे शिक्षा में विशेष सहयोग प्राप्त करेंए लेकिन जो कोई देश की सरकार में उत्तरदायी पद प्राप्त करना चाहते हैंए वे उस पद की अपेक्षित परीक्षा को उत्तीर्ण अवश्य करें।

आरक्षण ने समाज को कई संवर्गों में बांट दिया है। उच्च वर्ग व निम्न वर्ग के रूप में दो वर्गों में विभक्त हो जाते हैं। आरक्षण के प्रश्न पर भारतीय समाज उपर्युक्त जाति संवर्गों में बंट गया है जिसके कारण व्यक्ति की पहचान उसकी योग्यता के आधार पर न होकर जाति समूह से होने लग जाती है। इससे समाज में समानता व भाईचारे के विकास में बाधा उत्पन्न होती है। आरक्षित संवर्गों में सम्मिलित होने के प्रश्न को लेकर जातियों में आपसी होड़ बढ़ जाती है। अनारक्षित जातियाँ येन.केन प्रकारेण आरक्षित संवर्गों में सम्मिलित होने की होड़ में लगी हुई है। वे नेताओं पर भी राजनैतिक दबाव बनाने की कोशिश में लगे रहते हैं इसका परिणाम यह हुआ कि समाज के विभिन्न वर्गों में आपसी सहयोग घटा है, सामाजिक संगठन कमजोर हुआ है और विकास की गति धीमी हुई है (आहुजा, 2016)।

सामाजिक न्याय व डॉ. अम्बेडकर

सामाजिक न्याय की अवधारणा एक बहुत व्यापक शब्द है। इसमें एक व्यक्ति के नागरिक अधिकार है तो साथ ही सामाजिक समानता के अर्थ भी निहितार्थ है। यह निर्धनताए साक्षरताए छुआछूतए स्त्री-पुरूष हर पहलुओं और उसके प्रतिमानों को इंगित करता है। स्वामी विवेकानन्द ने आदर्श समाज की कल्पना करते हुए कहा कि राज्य ऐसा होना चाहिए जहाँ सभी 'ब्राह्मण' ब्राह्मण का अर्थ ज्ञानी होने से है। कोई भी न तो निम्न जाति से होगा और न ही उच्च जाति से होगा। सभी को शिक्षा व शिक्षित होने का अधिकार प्राप्त होगा (धनंजय खीर, 2016)।

सन् 1889 में विपिन चन्द्र पाल ने स्पष्ट किया ''हमारी धार्मिक रूढियाँ, लोगों की समता की घोषणा न की उनकी असमानता की घोषणा करती हैं। हमारा समाज गुणवत्ता (गुण) को स्वीकार नहीं करता बल्कि जन्म के गुण को स्वीकार करता है।''

19वीं सदी में भारतीय मानसिकता का वर्णन करते हुए रानाडे लिखते हैं कि ''हम लोग इन दिनों भी अपने ही देशवासी दलित के साथ किस प्रकार का व्यवहार कर रहे हैं। ऐसे समय में जब हमें और उन्हें अपने

© 2025 डॉ. मीनू तंवर. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

देश के लिए हाथ से हाथ मिलाकर काम करना चाहिएए हम लोग पुराने प्रभुत्व के विशेषाधिकारों को छोड़ने को तैयार नहीं हैं और हम लोग दलित और पिछड़ों को निम्न बनाए रखने पर जोर दे रहे हैं।

सामाजिक न्याय की स्थापना डॉ. भीमराव अम्बेडकर के जीवन का मुख्य लक्ष्य था। आप आधुनिक भारत के अन्याय के विरूद्ध संघर्ष के प्रतीक रहे हैं। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार शूद्रए नारीए कमजोर वर्गए दलित सहित भारतीय समाज का अधिकांश भाग नागरिक अधिकारों से वंचित व शोषण का शिकार है (रामगोपाल सिंह, 1992) । डॉ. अम्बेडकर ने परम्परागत हिन्दू समाज व्यवस्था में सामाजिक न्याय

प्रणाली को मुख्यतः तीन बिन्दुओं पर आधारित बताया है।

1. अन्धविश्वास
2. जातीय भेदभाव
3. लिंग भेद ;महिलाओं को अधिकारों से वंचित रखना

इस प्रणाली में विश्वास या आस्था का मुख्य आधार धार्मिक ग्रन्थ है। जिसमें भारत में जातीय श्रेष्ठता का आधार जन्म हैं, कर्म नहीं। डॉ. अम्बेडकर का सामाजिक न्याय सिद्धान्त प्राकृतिक न्याय के काफी करीब है। उनका मानना है कि सामाजिक न्याय के सिद्धान्त में जो जाति श्रेष्ठता और हीनता, धार्मिक कट्टरता, लिंग-भेद, जन्म पूर्व की धारणा को मान्यता देता है यह सामाजिक न्याय नहीं है। डॉ. अम्बेडकर की सामाजिक न्याय की अवधारणा नस्लीय भेदभाव, लैंगिक भेदभाव और क्षेत्रवाद से मुक्त है। इस अवधारणा में न केवल समाज के कमजोर वर्गों के साथ न्याय किया जाना है बल्कि उनके अधिकारों और हितों की भी रक्षा की जानी चाहिए। डॉ. अम्बेडकर का सामाजिक न्याय का सिद्धान्त निम्न सामाजिक बाधाओं पर कार्य करता है.

1. सामाजिक बहिष्कार
2. पुरूष शक्ति
3. जातीयता के आधार पर काम करने की मजबूरी
4. भूमि या सम्पति का असमान वितरण

डॉ. अम्बेडकर यह भली-भांति जानते थे कि यदि समाज का ढांचा न्याय पर आधारित नहीं तो कमजोर व पिछड़े वर्गों के हितों की रक्षा के लिए किए गए प्रयासों एवं संवैधानिक उपबन्धों का कोई मूल्य नहीं होगा। सामाजिक न्याय के संदर्भ में डॉ. अम्बेडकर के व्यक्तित्व व कार्यों में दो विशिष्ट पक्ष उल्लेखनीय हैं।

1. अन्याय के विरूद्ध विद्रोह व क्रांतिकारी संघर्ष
2. सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए रचनात्मक प्रयास।

इन्हें ही दृष्टिगत रखते हुए डॉ. अम्बेडकर ने संविधान के माध्यम से स्वतन्त्रताए समानता एवं भ्रातृत्व पर आधारित एक न्याय पूर्ण सामाजिक ढांचे की आधार शिला रखी। कानून मंत्री के रूप में डॉ. अम्बेडकर ने हिन्दू कोड बिल की रचना की जो हिन्दू महिलाओं की मुक्ति तथा हिन्दू समाज के पुनर्गठन की दिशा में तथा सामाजिक न्याय की स्थापना मे उनका अविस्मरणीय योगदान है (रामगोपाल सिंह, 1994)।

सारांश

सामाजिक न्याय और आरक्षण के बीच दुविधाजनक सम्बन्ध है। दोनों मे जहाँ सहगामी अन्तर्सम्बन्ध है, वहीं अन्तर्विरोध भी है। आरक्षण सामाजिक न्याय का पूरक व सहगामी है क्योंकि सामाजिक भेदभाव और सार्वजनिक रोजगार में समाज के विभिन्न वर्गों के बीच विषमता को मिटा, बिना सामाजिक न्याय की कल्पना करना कठिन है। सामाजिक न्याय का सार तत्व "समता का सिद्धान्त" है आरक्षण इस सिद्धान्त का मात्र एक अपवाद है। आरक्षण अपने आप में साध्य नहीं है, वह हमारे समाज में निहित सामाजिक अन्याय से टकराने के अनेक साधनों में से एक है। भारतीय समाज में जातिविहीन व वर्ग विहीन समाज की कल्पना दूर की कोड़ी हैए लेकिन सुखद पहलू यह है कि आज का मीडियाए साहित्य और प्रगतिशील दुनिया इस मुद्दे को बार-बार उठाती रही है। इससे सामाजिक न्याय के पक्ष में माहौल बन गया है। यह माहौल देश के नेताए बुद्धिजीवी, युवावर्ग को इस विषय पर सोचने पर मजबूर कर देगा फिर कहीं जाकर देश में सच्चे सामाजिक न्याय का माहौल बनेगा और इस समाज को विकसित समाज कहा जा सकेगा।

सन्दर्भ

1. कीर धनंजय. डॉ. अम्बेडकर: लाइफ एण्ड मिशन्स. मुम्बई: पापुलर प्रकाशन; 2016.
2. प्रसाद अनिरूद्ध. आरक्षण: सामाजिक न्याय एवं राजनैतिक सन्तुलन. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स; 1991.
3. सिंह आरजी. भारतीय दलितों की समस्याएं व उनका समाधान. भोपाल: मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी; 1986.
4. भारती. अस्पृश्यता निवारण में गाँधी–अम्बेडकर की भूमिका. 1993.
5. देसाई एआर. Social background of Indian nationalism. बम्बई: पापुलर प्रकाशन; 1982.
6. सिंह रामगोपाल. डॉ. अम्बेडकर व सामाजिक वैशानिक. भोपाल: मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी; 1992.
7. खण्डेला मानचन्द. मानवाधिकार व सामाजिक न्याय. जयपुर: आविष्कार पब्लिकेशन्स; 1996.
8. शर्मा जीएल. सामाजिक मुद्दे. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स; 2015.
9. आहुजा राम. सामाजिक समस्याएं. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स; 2016.
10. सिंह रामगोपाल. सामाजिक न्याय व दलित संघर्ष. जयपुर: राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी; 1994.
11. प्रसाद अनिरूद्ध. Reservation policy and practice in India. नई दिल्ली: दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन; 1990.
12. Tanwar M, Gupta SP. Health status of rural women: an overview. *Review of Literature*. 2018;5(9). ISSN:2347-2723.
13. Tanwar M, Gupta SP. Mahila swasthya avam rashtriya swasthya neeti: ek avlokan. *Research Direction*. 2018;6(7). ISSN:2321-5488.

© 2025 डॉ. मीनू तंवर. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

14. Tanwar M. Climate change and health: why should India be concerned? *Int J Curr Eng Sci Res*. 2018;5(5):152–158. ISSN:2393-8374.
15. Tanwar M. Policies and programmes for improving women's health in Rajasthan. *Think India J*. 2019;22(6):20–27. ISSN:0971-1260.
16. Tanwar M. Health conditions and status of women in India. *Jijnasa (JHIC)*. 2021;38(3):221–225. ISSN:0337-743X.
17. Tanwar M. Women health and family welfare in Rajasthan. *Kalyan Bharati JIHS*. 2021;36(13):161–167. ISSN:0976-0822.
18. Tanwar M. *Health status of women: a sociological viewpoint*. Germany: Weser Books; 2021. ISBN:978-3-96492-352-3.

Creative Commons (CC) License
This article is an open-access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.

CONFERENCE ORGANIZERS

- Desert Research Association (DRA), Headquarters – Jodhpur
- Nehru Study Centre, Jai Narain Vyas University, Jodhpur
- Government Girls College, Jhalamand (Jodhpur)
- Department of Geography, Dr. Bhim Rao Ambedkar Government College, Sri Ganganagar

In Collaboration with Kalinga University, Raipur (Chhattisgarh)

Disclaimer: The views, opinions, statements, and conclusions expressed in the papers, abstracts, presentations, and other scholarly contributions included in this conference are solely those of the respective authors. The organisers and publisher shall not be held responsible for any loss, harm, damage, or consequences — direct or indirect — arising from the use, application, or interpretation of any information, data, or findings published or presented in this conference. All responsibility for the originality, authenticity, ethical compliance, and correctness of the content lies entirely with the respective authors.

© 2025 डॉ. मीनू तंवर. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/